

## पंचम अध्याय

तुलसी के काव्य में सामाजिक व्यवस्था  
का स्वरूप

## तुलसी के काव्य में सामाजिक व्यवस्था का स्वरूप

**समाज का तात्पर्य एवं सामाजिक व्यवस्था :-** हम सब लोग समाज में रहते हैं। समाज के बिना हमारा जीवन सम्भव नहीं है। इसलिए कई बार यह भी कहा जाता है कि— “ जहाँ जीवन है, वहाँ समाज भी है।” वास्तव में, व्यक्ति एक दूसरे के साथ सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करते हैं। इनसे ही समूहों एवं समाज का निर्माण होता है।

**समाज शब्द का अर्थ:-** कोशों के अनुसार तथा समाज शास्त्रियों की दृष्टि में – समाज – पु० संवीयते चेति। सम + अज + घग् पशु भिन्नानां संघः।<sup>1</sup> समाज समूह, संघ, गिरोह, दल— (2) समा (3) एक ही स्थान पर रहने वाले अथवा एक ही प्रकार का व्यवसाय आदि करने वाले वे लोग जो मिलकर अपना एक समूह बनाते हैं, समुदाय शिक्षित समाज, ब्राह्मण समाज, (4) वह संस्था जो बहुत से लोगों ने एक साथ मिलकर किसी विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति के लिए स्थापित की हो, सभा जैसे संगीत समाज, साहित्य समाज।<sup>2</sup> अंग्रेजी में भी समाज शब्द का अर्थ भिन्न – भिन्न रूपों में दिया गया है। “ Meeting with falling in with a meeting assembling congregation, congress conelane soeity, saaociation colleetion”<sup>3</sup>

प्रसिद्ध समाजशास्त्री ‘मेकार्डवर’ के अनुसार समाज का अर्थ सामाजिक परस्पर अन्तः क्रिया Social Interaction है।<sup>4</sup> इनका स्पष्टीकरण करते हुए ‘ गिस्ट’ लिखते हैं कि यह क्रिया वह परस्पर प्रभाव होती है जो मनुष्य परस्पर उत्तेजना एवं प्रतिवचन के द्वारा एक दूसरे पर डालते हैं। यह परस्पर प्रभाव मानसिक जागरूकता के फलस्वरूप होता है। मानव समाज में यह प्रक्रिया सदैव होती रहती है।<sup>5</sup> ‘लम्ले’ के शब्दों में “ यह हमारे जीवन की आधार स्तम्भ है, वास्तव में यह वही है जो हम सामाजिक शब्द से समझते हैं, वह समाज के लिए उसी प्रकार से है जैसे ईट और चूना इमारतों के लिए होता है।”<sup>6</sup> बीसज एण्ड वीसज’ के अनुसार – समाज की जड़े सामाजिक परस्पर सम्बन्धी क्रिया में गड़ी हुई है।<sup>7</sup>

‘पारसन्स’ के अनुसार – “समाज को अन मानव सम्बन्धों की पूर्ण जटिलता के रूप में परिभाषित किया जाता है, जो साहस – साहय सम्बन्धों के रूप में क्रियाओं के करने से उत्पन्न हुए हैं: चाहे ये यथार्थ हो या प्रतीकात्मक।”<sup>8</sup> गिडिंग्स के अनुसार – “ समाज स्वयं एक संघ है, संगठन है औपचारिक सम्बन्धों का ऐसा है योग है जिसमें सहयोग देने वाले व्यक्ति परस्पर सम्बन्धों द्वारा जुड़े रहते हैं।”<sup>9</sup> इंकलिस’ के अनुसार

– “ ऐसी सामाजिक व्यवस्था जो संस्थाओं से बड़ी है तथा समुदायों से भिन्न, फिर भी यह संस्थाओं के साथ न तो स्वतः उपस्थित रहती है न ही प्रत्येक समुदाय से इसका उदभव होता है। यह सबसे बड़ी इकाई है, जिसका सम्बन्ध समाजशास्त्र से है तथा इसे ही समाज कहा जाता है।”<sup>10</sup>

‘लेपियर’ के अनुसार – “ समाज मनुष्य के एक समूह का नाम नहीं है, वस यह एक ऐसी जटिल अन्त क्रियाओं का प्रतिमान है, जो मनुष्य के बीच उत्पन्न होता है।”<sup>11</sup> ‘मैकाइवर’ के अनुसार – “ समाजशास्त्र का प्रतिपाद्य (विषय) सामाजिक सम्बन्धों का वह जाल है जिसे हम समाज कहते हैं।”<sup>12</sup> मनुष्य एक विचार शील प्राणी है। समाज में रहना मनुष्य का स्वभाव है, अतः अत्यन्त प्राचीन काल से ही मनुष्य ने इस प्रश्न पर विचार करना प्रारम्भ कर दिया था कि उसे साथी अन्य मनुष्य के प्रति किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए। “ मनुष्य के जीवन में एक दूसरे के साथ सम्बन्धों का जाल सा विछा हुआ है, उसी को समाज कहते हैं। इस प्रकार समाज द्वारा जब हम समाज का अध्ययन करते हैं, तो वस्तुतः हम मानव सम्बन्धों के उस तारतम्य का ही अनुशीलन करते हैं जिसमें मनुष्य के सामाजिक व सामूहिक जीवन का पूर्ण रूप से ही समावेश हो जाता है।”<sup>13</sup>

मार्क्स वादी सामाजिक सम्बन्धों को स्थापित करने के लिए आर्थिक व्यवस्था को अति – आवश्यक मानते हैं। कार्ल-मार्क्स के शब्दों में – “ इतिहास की भौतिकवादी धारण का प्रस्थान बिन्दु यह स्थापना है कि मानव जीवन के पोषण के लिए आवश्यक साधनों का उत्पादन और उत्पादन के पश्चात् उत्पादित वस्तुओं का विनियम प्रत्येक व्यवस्था का आधार है।”<sup>14</sup> समाज में ही संस्कृति का सम्यक विकास होता है। सांस्कृतिक जीवन के निर्वाह के लिए समाज व्यवस्था आवश्यक है। मनुष्य उसका निर्वाह अपने कुल, ग्राम तथा जन समूह से सम्पर्क स्थापित करने पर ही कर सकता है। संस्कृति का विकास समाज में निहित है। समाज मनुष्य का संगठन है। अतः सांस्कृतिक जीवन के लिए समाज, जाति, वर्णव्यवस्था, आश्रम व्यवस्था, मान्य परम्परायें तथा स्थान आदि विषयों का विवेचना होता है और इन्हीं व्यवस्थाओं में संस्कृति का उदगम है। अतः स्पष्ट है कि संगठित समाज – व्यवस्था में ही सांस्कृतिक विकास समाहित रहता है।

### **पारिवारिक जीवन :-**

तुलसीदास के काव्यमयी रचनाओं में पारिवारिक जीवन की स्पष्ट – झलक मिलती है। भारतीय समाज में पारिवारिक जीवन का बहुत महत्त्व रहा है। हमारे समाज

में संयुक्त परिवार की प्रथा रहने के कारण पारिवारिक जीवन की उपयोगिता और भी बढ़ जाती हैं। तुलसी काव्य के अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने भारतीय पारिवारिक जीवन को रूपायित करने का सफल प्रयास किया है। जिसमें उन्होंने स्त्री पुरुष के सम्बन्ध, संस्कार, वैवाहिक पद्धति, वेश भूषा, आचार, विचार, खान-पान पारस्परिक व्यवहार को दिखाने का सफल प्रयास किया है अब हम यहाँ उनके काव्यों में चित्रित पारिवारिक जीवन को विभिन्न शीर्षको में दिखाने का प्रयास करेंगे। –

### **स्त्री पुरुष का सम्बन्ध :-**

किसी भी समाज अथवा राष्ट्र के सर्वतोमुखी अभयुदय में स्त्री और पुरुष का समान महत्व होता है। पुरुष यदि घर से बाहर के कार्यों की सुचारुता एवं उन्नति का कर्तव्य वहन करता है, तो स्त्री सेवा सुश्रुषा स्नेह आदि से सम्बलपूर्वक घर के विभिन्न कष्ट साध्य दायित्वों का निवहि करती हुई अपनी चरम उपयोगिता को सार्थक रूप में सिद्ध करती है। स्त्री के बिना पुरुष अपूर्ण है। जीवन रथ के दो चको स्त्री एवं पुरुष के एक समान चलने पर ही जीवन आनन्दमय बनता है। स्त्री के विविध रूप हैं – पुत्री, भगिनी, पत्नी, माता आदि। इन सभी रूपों में पत्नी सर्वाधिक महात्त्वपूर्ण है क्योंकि पत्नी पद के उपरान्त ही स्त्री माता पद की अधिकारिणी होती है। स्त्री के बिना वस्तुतः पुरुष की कोई सत्ता ही नहीं है। वृध्दारण्यक उपरिषद में इस तत्व को बहुत सुन्दर रूप में प्रदर्शित किया है। 'आरम्भ में पुरुषाकार आत्मा ही थी उसने भली-भाँति अवलोकन से आत्मा से भिन्न कोई दूसरा व्यक्त पदार्थ नहीं देखा। निश्चयपूर्वक उस अकेले ने रमण नहीं किया। इस कारण आज भी एकाकी पुरुष रमण नहीं करता। उस पुरुष ने दूसरे साथी को चाहा .... उसने इसी आत्मा को दो रूपों में परिवर्तित किया। उस समय वे पति-पत्नी हुए।'<sup>15</sup>

डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दों में 'स्त्री और पुरुष दोनों नदी के तटों की भाँति सहयुक्त हैं। दोनों के बीच में जीवन की धारा प्रवाहित होती है। वैदिक साहित्य में स्त्री और पुरुष की उपमा पृथ्वी और धुलोक से दी गई है। जैसे शुक्ति के दो दलों के बीच मोती की स्थिति होती है, ऐसे ही स्त्री और पुरुष इन दोनों के मध्य सन्तति है। धावा – पृथ्वी एक ही संस्थान से परस्पर पूरक है, जब आकाशचारी मेघ वृष्टि के द्वारा पृथिवी को गर्भ धारण कराते हैं। तब वृक्ष – वनस्पतियों का जन्म होता है। यही स्थिति पति- पत्नी की है।'<sup>16</sup>स्त्री और पुरुष का सम्बन्ध प्रेम और विश्वास पर टिका होता है।

हमारे यहाँ कुछ सामाजिक नियम हैं कुछ प्रथाएँ हैं कि एक बार जो पुरुष किसी नारी का हाथ पकड़ लेता है सामाजिक रीति – रिवाज के बंधन में बाँधकर उससे विवाह कर उसे अपने घर लाता है तथा जीवन भर उसे सम्मान देता है वह अन्य नारी से सम्पर्क स्थापित नहीं कर सकता। यदि कोई व्यक्ति अपनी स्त्री के रहते हुए किसी दूसरी स्त्री से सम्बन्ध स्थापित करता है तो समाज उसे कुदृष्टि से देखता है तथा उसे दण्ड भी दिया जाता है।

पारिवारिक जीवन में सुचारूता – स्थापन करने के लिए तुलसीदास स्त्री – पुरुष के मूल में श्रद्धा विश्वास अथवा प्रीति एवं प्रतीति को रखकर उसे एक साधारण सौष्ठव प्रदान करने की चेष्टा करते हैं। भवानी और शंकर को श्रद्धा एवं विश्वास का प्रतीक मानकर सीता और राम को ' गिरा अरथ जल बीचि सम कहकर एक अनुपम समैक्य की घोषणा करके लौकिक व्यवहार में इसे अपनाते पर बल देते हैं। ऐसा समुचित व्यवहार तभी सम्पन्न हो सकता है जब तर्क, अविश्वास, अहमन्यता, दृढवदिता का परित्याग करके त्याग पर विश्वास, श्रद्धा आदि का अवलम्बन किया जाए। तुलसी की यह धारणा रहीं है कि स्त्री सदैव पातिव्रत्य का पालन करती हुई पति के निर्देशानुकूल चलने वाली बनी रहे। मनु ने पति – पत्नी के धर्म का उल्लेख करते हुए कहा है कि –

**“ मृत्युपर्यन्त पारस्परिक विश्वास ही पति –पत्नी का सबसे धर्म है। एक बार परिणय सूत्र में आवद्ध हो जाने पर पति –पत्नी का यह कर्तव्य है कि उनमें कोई विभेद न उत्पन्न हो और ने एक दूसरे के प्रति आस्थावान बने रहे।”**<sup>17</sup> तुलसी के 'मानस' में पति की अवेहलना के कारण सती को शिव के वचनों में अविश्वास प्रकट करके आश की अपने अहं का विस्तार करते हुए मानमानी करनी चाही थी जिसके परिणाम स्वरूप उन्हें अत्यन्त कष्ट झेलना पड़ा था।<sup>18</sup>

इस प्रकार स्पष्ट है कि पति की आज्ञा के विरुद्ध चलना स्त्री को अत्यन्त भयंकर परिणाम भुगतान पड़ता है। किन्तु सती के इस कार्य से शिव भी बहुत दुःखी थे। इससे स्पष्ट होता है कि स्त्री – पुरुष का सम्बन्ध एक दूसरे पर आश्रित है। मनुशतरूपा तप प्रकरण में भगवना से बरदान माँगते पति – पत्नी दोनों ने पुत्र – वरदान प्राप्त किया था।<sup>19</sup> तुलसी के 'मानस' में ही राम के वन जाने के समय सीता जी कहती है जैसे जीव के बिना शरीर, पानी के बिना नदी तैसे ही पुरुष के बिना स्त्री है।<sup>20</sup> विपदग्रस्त होकर भी पत्नी को चाहिये कि वह किसी भी क्षण अपने पति के चित्तन को त्यागकर अन्य का

चिन्तन न करें। सीता को अशोक वाटिका में रखकर रावण न साम, दाम, भेद, दण्ड आदि उपायों से पथ – विचलित करने का अनेक बार प्रयास किया, परन्तु सीता ने अपने पतिदेव का नाम स्मरण जो उत्तर दिया वह पारिवारिक जीवन का स्त्री – पुरुष के सम्बन्ध का अनुठा उदाहरण है—

“ सुनु दस मुख खधोव प्रकासा। कवछुँ कि नलिनी करइ विकासा।<sup>21</sup>”

इसी भाव का लक्ष्य करते हुए डॉ० वलदेव प्रायद मिश्र मानस शास्त्री क्लियों डासन नामक – महिला के लेख (फरवरी 1958 के डाइजेस्ट में प्रकाशित) का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि— “ नारी मूल में भावशील है। निर्णय, संगठन, निर्देश आदि में पुरुष वाजी मारता है जबकि नारी केवल भावनाओं। में वहा करती है। अतएव प्राकृतिक विधान यही जान पड़ता है कि नारी— नर के नियन्त्रण में रहे। इस विधान के विरुद्ध उसकी उछल कूछ वेकार ही है। उसे स्वीकार कर लेना चाहिए और उसकी भाव – प्रवणता पर पुरुष का निरीक्षण रहना ही चाहिए और उसका संरक्षण होना ही चाहिए। उसकी भाव – प्रवणता उसमें सहज भीसता के भाव भरती है जिसे जाण पाने के लिए वह पुरुष का सहारा चाहती ही है। इसके बदले वह पुरुष को अपनी सम्पूर्ण श्रद्धा अर्पित कर देती। नारी विवेक के लिए बनाई गई है।<sup>22</sup>”

इस प्रकार जहाँ तुलसीदास पत्नी के इस सहजा पुनीत प्रेम, आत्मम्याग, सेवा भाव, तथा अनुगामिनी बनकर परिचर्या करते हुए। जीवन –निवहि के नैतिक आदर्श का महत्व बताते हैं वहाँ वे पति के लिए भी तदभाव भावित नीति के ही पक्षपाती है। पुरुष का भी स्त्री के प्रति कितना अगाध प्रेम होना चाहिए इसका उदाहरण वे श्री राम के मुख से कहलवाते है – पति का कर्तव्य हो जाता है। कि वह पत्नी की इच्छानुसार ही कार्य करे जीवन में वुचारुता, माधुर्य तथा एकरसता बनी रहे। वनगमन के समय सीता को साथ ले जाकर तथा पुनः मार्ग में सीता के थक जाने पर उसकी आभ्यन्ति अभिलाषा पूर्ण करने के लिए राम का आचरण इसका घोटक है। तुलसीदास जी का स्त्री – पुरुष के सम्बन्ध में पारिवारिक जीवन रूपी नीति का लक्ष्य मानव – जीवन के लक्ष्य (चतुर्वर्गफलप्राप्ति) की निर्वाथ उपलब्धि है जिसके लिए उन्होंने अत्योन्याश्रय भाव के सूत्र के आधार पर परिवार को लौकिक दृष्टि से सुखी वनाते हुए अन्तिम लक्ष्य (मोक्ष) को प्राप्त करता है।

**वैवाहिक पद्धति :-**

भारतीय समाज में वैवाहिक पद्धति भी एक प्रमुख स्थान रखती है। विवाह हमारे

समाज में 16 संस्कारों में से एक प्रमुख संस्कार माना गया है। इस संस्कार के अनुसार पिता अपनी पुत्री के युवा हो जाने पर एक योग्य वर का अन्वेषण करता है और उसी के साथ वैदिक पद्धति से अपने पुत्री का विवाह कर देता है। तुलसी के काव्य में इस वैवाहिक पद्धति को अपनाया गया है। तुलसी ने “शिव – पार्वती के विवाह का वर्णन रामचरित मानस एवं पार्वती मंगल में किया है। इसमें उन्होंने लग्न, लग्नपत्रिका, बारात, अगवानी, जनवास, परिछन, जंवनार, गारी, विवाहलन, कन्या के मंडप आगमन, गणपति पूजन, कन्यादान, पाणिगृहण, दहेज आदि का वर्णन किया है।”<sup>23</sup>

‘राम – सीता’ के विवाह में उन्होंने शिव विवाह में प्रतिपादित इन सव शास्त्रविहित तथा लोकग्रहीत रीतियों के अतिरिक्त सुगन भेजने, वर के मंडप आगमन, शाखोच्चार, गठवन्धन, सिलपोहिनी, माँवरी लावा, सिंदूस्दान, वरवधु के कोहरव गमन तथा लहकौर हल्दी पूजन आदि का विस्तृत वर्णन किया है। जिनका प्रचलन आज भी भारतीय समाज में प्रचलन आज भी भारतीय समाज में प्रचलित है।

### **वेशभूषा :-**

पारिवारिक संस्कृति और सभ्यता के स्तर का निर्धारण करने में वेश भूषा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। तुलसी के काव्य में स्त्रियों की वेशभूषा के विषय में सारी, चुनरी, और पिछौरी का उल्लेख मिलता है। ‘राम चरितमानस’ में सीता विवाह के अवसर पर सुन्दर साड़ी से सुशोभित है, जगजन्नी की महान छवि अतुलनीय है।<sup>24</sup> सीता जी फेरो के समय पर लाल रंग की साड़ी पहनकर मण्डप में प्रवेश करती है जो विवाह के अवसर पर सगुन मानी जाती है, यह प्राचीन काल की परम्परा आज भी भारतीय समाज में चली आ रही है। तुलसीदास ने राम – लक्ष्मण की वेशभूषा करते हुए पीतवसन (पीताम्बर) चौतनी तथा मुकुट, करनफूल मुद्रिका अंगुलिगाण आभूषण आदि का वर्णन किया है। राम के वनवासी वेश का वर्णन करते हुए उन्होंने बलकल चीर की चर्चा की है। बच्चो की वेशभूषा के विषय में तुलसी काव्य में झंगुली, तनियाँ, कुलही, कछौरी, पगिया, पैजकी आदि का उल्लेख मिलता है।<sup>25</sup> मुनि सादा वल कल चीर ही धारण करते थे, वशिष्ठ विश्वामित्र, अत्रि, भरद्वाज, सुतीथन आदि ऋषि चीर धारण ही करते थे।<sup>26</sup>

इस प्रकार उक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि उस समय नर – नारी अपनी स्थिति और सामाजिक स्तर के अनुसार वस्त्रों और आभूषणों का उपयोग करते थे। दैनिक वस्त्रों के अतिरिक्त पर्वोत्सवों, शुभ संस्कारों और विशिष्ट अवसरों पर विशेष रूप

से सुन्दर और आकर्षक वस्त्र पहनने का रिवाज था। सूती और रेशमी और ऊनी तीनों प्रकार के वस्त्र पहने जाते थे। लोग आभूषण प्रिय थे। पुरुष और स्त्रियाँ बालक और बालिकाएँ सभी आभूषण पहनते थे। उच्च परिवारों के और धन सम्पन्न व्यक्ति सोना – चाँदी और बहुमूल्य भाणिवन्य मूँगा आदि के आभूषण पहनते थे और निम्न जातियों के एवं निर्धन लोग काँसा ताँवा आदि के। स्त्रियों में काँच की चुड़ियाँ पहनने का रिवाज था

**आचार—विचार :-**

तुलसीदास जी के काव्यमयी रचनाओं में परिवार के सदस्यों के पारस्परिक व्यवहार एवं उनके चिन्तन मनन का रूप भी देखने को मिलता है। परिवार में विभिन्न विचार धारा के लोग रहते हैं, वे परस्पर कैसा व्यवहार करते हैं विपरीत विचार के प्रति उनकी क्या प्रतिक्रिया रहती है। इसका स्वरूप भी हमें अनेक स्थलों पर देखने के लिए मिलता है—राम कैकयी के प्रति पूर्ण श्रद्धा भाव बनाये रखकर अन्य माताओं की अपेक्षा उन्हे अधिक मान देते हैं— चित्र कूट में भी वे सबसे पहले कैकयी से ही भेटे थे

**‘प्रथम राम भेंटी कैकयी। सरल सुभॉय भगति ममि भेई। “ 27**

इस प्रकार के विचारों से पारिवारिक सम्बन्धों में समरसता बनी रहती है। भाई—भाई में प्रेम भी भ्रातृत्व – व्यवहार का प्रोषक होता है। कैकयी में वन में भेजने के लिए बरदान केवल राम के लिए माँगा था किन्तु लक्ष्मण का नवविवाहिता पत्नी तथा अन्य समस्त परिवार को त्यागकर साथ जाना भ्रातृत्व – प्रेम का अनोखा उदाहरण है। लक्ष्मण की इस त्याग भावना ने पुरुषोत्तम राम को इतना द्रवित कर दिया कि लक्ष्मण—मूर्छा के समय राम विलाप करते हुए यहाँ तक कह देते हैं कि जो मे यह जानता कि वन में मुझे तुमसे अलग होना पड़ेगा तो मे पिता के वचनों का पालन नहीं करता।<sup>28</sup> भरत का भ्रात—नीति का एक अनुठा उदाहरण है। संसार की काई भी वाघा उन्हें अपने भ्राता के प्रति निष्ठापूर्ण उद्देश्य से तिल मात्र भी हटा नहीं सकी। डॉ० बलदेव प्रसाद मिश्र के शब्दों में भरत की गरिमा इन शब्द में स्पष्ट हो जाती है कि —“ अयोध्या की नागर संस्कृति ने उनके सामने लोभ के जाल फैलाये, श्रृंगवेर की निश्चल ग्राम्य संस्कृति ने उनके सामने क्रोध के जाल ताने, और प्रयाग की गम्भीर तपो वनी संस्कृति ने उनके सामने काम के जाल उपस्थित किये परन्तु भरत ही थे जिन्होंने सच्चे साहयक जीव की तरह इन तीनों बाधाओं को सहज ही पार कर लिया और अपने लक्ष्य निर्वाध पहुँच गये।<sup>29</sup>



### **खान-पान :-**

तुलसीदास ने अपने साहित्य में खान-पान का विविध एवं सहज ढंग से वर्णन किया है—उन्होंने केवल विशिष्ट अवसरों पर यत्र-तत्र सन्तुलित मात्रा में व्यवहृत खाद्य और पेय पदार्थों का निर्देश किया है। खान-पान के विवरण को उन्होने तीन मार्गों में विभक्त किया है। (1) सांस्कृतिक उत्सवों के प्रसंग में, (2) युद्धादि के प्रसंग में और (3) स्फुट प्रसंगों में, 'तुलसी' ने कवितावली में सूप (दाल) ओदन (भात) सुरिभि- सरयि (गाय का घी) आदि का वर्णन किया है।<sup>30</sup> 'रामचरितमानस' में 'पार्वती' द्वारा तपस्या के समय में अनेक वर्षों तक कंदमूल खाए थे। 'यह उक्ति केवल ऋषि मुनि व तपादि के समय में प्रतीत होती है। 'शिव-पार्वती' के विवाह के समय राजा हिमांचल' ने अनेक प्रकार की भोजन सामग्री देवताओं को सहर्ष परोसी थी।<sup>31</sup> 'रामचरितमानस' में ही 'राम-सीता' विवाह के अवसर पर विविध प्रकार की भोजन विधियों का वर्णन किया गया है।<sup>32</sup> 'रामचरितमानस' में ही निशाचरों के खान-पान का उल्लेख मिलता है— राक्षस महषि (भैसा), मानुष, धेनु, खर, अज, मदिरा आदि का विवरण मिलता है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि राक्षस लोग मदिरापान व तामस आहार का प्रयोग करके ही युद्ध करते थे।<sup>33</sup> एक दो स्थानों पर 'भाँग' का भी उल्लेख मिलता है। इसके प्रतीत होता है कि उस समय 'भाँग' का भी खूब सेवन होता था परन्तु तुलसी इन्हे निकृष्ट समझते हैं। "जो सुमिरत भयों भाँग ते तुलसी तुलसीदास" यह उक्ति भाँग की तुच्छता एवं हेयता की सुचना देती है। इस प्रकार तुलसीदास जी ने भारतीय सनातन धर्म के अनुसार ही खान-पान का वर्णन किया है जिसकी परम्परा आधुनिक युग में ही प्रतीत होती है।

### **आवास :-**

मानव का आवास तद्रयुगीन सामाजिक जीवन का घोटक होता है। प्रत्येक व्यक्ति का भिन्न-भिन्न तरह से रहन-सहन होता है। प्राचीनकाल से ही लोक-वर्ग और अभिजात्य वर्ग के रहन-सहन में अन्तर दिखाई पड़ता है। किसी काल विशेष में मनुष्य की सामाजिक अवस्था कैसी थी, किस प्रकार का जीवन व्यतीत किया जाता था, इसकी झलक समकालीन लोक — मानव के रहन-सहन में प्रकट होती है। मानव के विकास में आवास की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही है। तुलसी के काव्य में हमें आवास के विविध रूपों का चित्रण देखने के लिए मिलता है।

## अतिथि सत्कार :-

“न तिथिः विधते येषा ते अतिथियः” अर्थात् जिसके आने की तिथि नहीं होती वे अतिथि कहलाते हैं। अतिथि शब्द अत् + इथिन करने पर सम्पन्न होता है। “अतिथि सातत्येन गच्छति न तिष्ठति”। अतिथि सत्कार भारतीय संस्कृति की प्राचीन परम्परा नहीं है। यहाँ पर अतिथि को देवता के समान पूजा जाता है। “अतिथि देवो भवः” अर्थात् अतिथि को देवता के समान समझने वाले बनो।<sup>34</sup> मनुस्मृतिकार ने कहा है कि— “जो ब्राह्मण एक रात्रि पराये घर में रहता है उसे अतिथि कहते हैं। उन्होंने यहाँ तक कहा है कि जो भोज्य वस्तु अतिथि को नहीं दी गयी उसे स्वयं भी न खाये क्योंकि अतिथि का पूजन धन—यश—आयु और स्वर्ग को देने वाला है।<sup>35</sup> अतिथि सेवा को “मनुष्य यज्ञ” कहा गया है।<sup>36</sup> अतः अतिथि को सबसे पहले भोजन कराना चाहिए। “हितोपदेश” में कहा गया है कि अतिथि रूप में आये हुए शत्रु का भी यथोचित आदर करना चाहिए।<sup>37</sup>

निम्न वर्ण के व्यक्ति को भी अतिथि रूप में आने पर उसका यथोचित सत्कार करना चाहिए क्योंकि अतिथि सर्वदेव मय होता है।<sup>38</sup> बाल्मीकि रामायण में राजा दशरथ ने अतिथि रूप में आये हुए विश्वामित्र का स्वागत करते हुए कहा है— महामुने जैसे किसी मरणावस्था में मनुष्य को अमृत की प्राप्ति हो जाये, निर्जल प्रदेशों में वर्षा हो जाए, सन्तानहीन को पुत्र हो जाये उसी प्रकार आपका यहाँ शुभागमन हुआ है मेरे अहोभाग्य हैं।<sup>39</sup> आप सर्वथा मुझसे सब प्रकार की सेवा लेने के अधिकारी हैं। महाभारत में कहा गया है— जिस गृहस्थ के द्वार से कोई अतिथि निराश होकर लौट जाता है, वह गृहस्थ को अपने पाप दे, पुण्य लेकर लौट जाता है।<sup>40</sup> महाकवि कालिदास के “रघुवश महाकाव्यम्” में अतिथि सेवा का वर्णन इस प्रकार है—शरभंगः मुनि की अतिथि पूजा छाना से मार्ग के परिश्रम को हरने वाली तथा अत्यन्त मधुर फलों से युक्त है और अपने शिष्यों के साथ अतिथित्य सत्कार करते हैं।<sup>41</sup> वेदो, ब्राह्मण ग्रन्थ धर्मसूत्रों में स्मृतियों की ही बातों का समर्थन कालिदास के प्रसिद्ध नाटक “अभिज्ञान शकुन्तला” में मिल जाता है। अतिथि रूप में आये “दुर्वासा ऋषि” का अतिथ्य करने वाली शकुन्तला को कठोर शाप की भागिकी बनकर दुष्परिणाम भोगने पड़े।<sup>42</sup> ‘सूरसागर’ में सुदामा के आने पर भगवान् कृष्ण स्वयं उनकी सेवा करते हैं और अपने हाथों से उनके चरण धोते हैं।<sup>43</sup> श्री कृष्ण के आने की सूचना पर सुफलकसूत अकूर आदरपूर्वक उन्हें हार ले जाते हैं और चरण छोकर अतिथि—सत्कार करते हैं। भक्त कवि कवीरदास ने भी यही भाव व्यक्त किए हैं।

**जिहि घर साधु न पूजिए, हरि की सेवा नाँहि।**

**ते घर मरघट सारके, भूत बसै तिन माहिं।।<sup>44</sup>**

इतना ही नहीं वे भगवान से उतना ही अन्न—धन्न माँगते हैं जितने से गृहस्थ जीवन का निवाहि तथा अतिथि सेवा हो सके

**साई इतना दीजिए, जामै कुटम समाय।**

**मै भी भूखा न रहूँ, साधु न भूखा जाय।।<sup>45</sup>**

इस प्रकार अतिथि सत्कार भारतीय संस्कृति की एक प्राचीन परम्परा है। यहाँ अतिथि को साक्षात् नारायण—स्वरूप माना गया है। अतिथि के आने पर उसकी तन—मन—धन से सेवा की जाती है। आजकल युरोपीय सभ्यता के प्रभाव से यह प्रवृत्ति बहुत कुछ कम हो गयी है, परन्तु अतिथि सत्कार आदिकाल से भारतवर्ष के निवासियों का एक प्रधान और सराहनीय गुण है। जब कोई व्यक्ति अतिथि के रूप में किसी दूसरे व्यक्ति के घर जाता है तो वह अपनी सामर्थ्य के अनुसार उसका स्वागत और मान—सम्मान करता है ऐसे ही उदाहरण हमें तुलसी के काव्य (मानस) में देखने के लिए मिलते हैं—“ महर्षि विश्वामित्र महाराज दशरथ के यहाँ पर पहुँचते हैं तो महाराज उनके चरणों को धोकर उनकी पूजा करते हैं, और चारों पुत्रों को उनके चरणों पर डालकर प्रणाम करते हैं।<sup>46</sup> विश्वामित्र राम—लक्ष्मण के साथ मिथिला में पहुँचते हैं तो महाराज जनक विप्रवृन्द सहित उन्हें प्रणाम करते हैं और उचित अतिथि सत्कार करते हैं।<sup>47</sup> इसके अतिरिक्त भरद्वाज अगस्त्य अत्रि आदि ऋषि राम का बड़े प्रेम और अत्यन्त श्रद्धा से अतिथि सत्कार करते हैं। इस प्रकार तुलसी के काव्य में भारतीय संस्कृति के अनुसार उचित रूप में अतिथि सत्कार का चित्रण हुआ है।

**शिक्षा :-**

‘शिक्ष्यते विद्योपादीयतेडनाया इति शिक्षा’<sup>48</sup> इस व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ से संसार किसी भी विद्या का ज्ञान प्राप्त कराने का साधन ही शिक्षा है। विद्या प्राप्त करा देने में ही अविद्या का निराकरण कर देना ही अन्तर्निहित है। अविद्या से उत्पन्न एवं पतनोन्मुखी सभी विघातक प्रवृत्तियों से रक्षा करते हुए विद्या जनित समस्त उर्ध्वगामी प्रवृत्तियों की और संचालित कर देने वाला चिरकालिक सत्र ही शिक्षा नाम से व्यवहृत होता है। शिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति समाज या राष्ट्र के आभ्यन्तर विद्यमान सहज मैलिक स्वरूप का प्रस्फुटीकरण सम्भव होता है। जिस प्रकार खान की गहराई से निकला

खनिज हीरे का पत्थर भली भाँति तराशने पर ही प्रकाशोज्ज्वल बहुमूल्य हीरे के रूप में समादृत होता है, उसी प्रकार जड़ एवं अज्ञानी मानवभी शिक्षा से ही परिष्कृत और सुसंस्कृत होकर सम्मानीय बनता है। संक्षेप में कहे तो शिक्षा से ही मानव में मानवता का आधान होता है। शिक्षा का प्रवाह सुदूर अतीत से सतत् प्रवाहित होता आ रहा है। शिक्षा के प्रथम सोपान माता-पिता है। सर्वप्रथम बालक को उन्हीं को ज्ञान प्राप्त होता है। तत्पश्चात् वह विधिवत् ज्ञानजिन करता है। प्राचीनकाल में ज्ञानार्जन गुरुकुलो पर आधारित था। गुरुकुलो में कुलपतियों या गुरुओं का व्यवहार प्रत्येक बालक के साथ पुत्र वत ही था। सम्भवतः इसका कारण यही था कि सामाजिक संघर्ष से गुरुकुल अदुते थे। 'रामचरितमानस' में जब राम लक्ष्मण आदि चारों भाई कुमारावस्था में हो जाते हैं तो राजा दशरथ उनका यज्ञोपवतीत संस्कार कराके गुरुकुल में विद्याध्ययन के लिए भेज देते हैं।<sup>49</sup> वेद शास्त्रों में गुरुकुल पद्धति के उदाहरण मिलते हैं " कृष्ण वलराम भी उपनयन संस्कार के पश्चात् संदीपन गुरु के पास विद्या गृहण करते हैं।<sup>50</sup> इस प्रकार तुलसी दास के काव्य में प्राचीन गुरुकुल प्रणाली शिक्षा के लिए सुमुचित व्यवस्था थी।

### **रीति-रिवाज :-**

लोक जीवन में शास्त्रविहित नाना प्रकार के रीति-रिवाज प्रचलित हैं जो अतीत काल से चले आ रहे हैं। उनमें से अनेक प्रथाओं और रीतियों का आधुनिक युग में भी प्रचलन है। तुलसी काव्य में हमें अनेक रीति-रिवाज अन्यत्र स्थलों पर उल्लेख मिलता है। अतीतकाल से ही भारतीय समाज में संस्कारों की प्राचीन मान्यता रही है, जिनका अनुसरण आज भी समाज कर रहा है। ये मानव समाज के सर्वांगीण विकास के लिए शास्त्रविहित एवं परम्परागत भौगोलिक कृत्य होने हैं। शास्त्रनिर्दिष्ट संस्कारों में तुलसी ने जातर्का नामकरण, चुडाकरण, कणवेद्य, यज्ञोपवतीत (उपनयन) दिवाह और अंतेष्टि आदि का उल्लेख किया है। 'राम जन्म के अवसर पर महर्षि वशिष्ठ द्वारा वेद विहित, ब्राह्मणों द्वारा पूजा-पाठ महाराज दशरथ करवाते हैं।<sup>51</sup> पुत्र-जन्म पर मंगल गान होता है।<sup>52</sup> जिसका आज भी विशेष रूप से प्रचलन है नामकरण के समय हवन, सामवेद आदि का गायन कराया जाता था उसका भी भारतीय सभा में प्रचलन है। उपनयन संस्कार पाँचवे साँववे वर्ष में होता था तुलसी काव्य में भी इसका उदाहरण मिलता है कि-

**करनवेध उपवीत विआहा। संग संग सब गए उदाहा।<sup>53</sup>**

इसके बाद विवाह संस्कार है क्योंकि इसके सम्पन्न हुए बिना कोई भी व्यक्ति न तो समाज के लिए प्रतिष्ठित समझा जाता है और न ही उपयोगी। विवाह संस्कार के सम्बन्ध अनेक कृत्य और रीति— रिवाज प्रचलित हैं। इस संस्कार में लग्न, लग्नपत्रिका, वारात, अगवानी, जनवास, परिछल, जवंनार, गारी, विवाहलग्न, कन्या के मण्डप आगमन गणपति — पूजन, कन्यादान, पाठा ग्रहण दहेज आदि कार्य किए जाते हैं तुलसी काव्य में 'राम—सीता' विवाह के अवसर पर इन रीति—रिवाजों का वर्णन मिलता है।<sup>54</sup> दहेज प्रथा का उल्लेख भी हमे तुलसी काव्य में मिलता है। राजा जनक कम्बल, गज, रथ, दास, धेनु, उपहार, तुरग, स्वर्ण, मनि आदि राजा दशरथ को भेंट करते हैं। विवाह के अवसर स्त्रियों द्वारा गालियाँ देने का तुलसी काव्य साहित्य में मिलता है<sup>55</sup> जिसका रिवाज आज दृष्टिगोचर होता है। मृत्यु के पश्चात अन्तयेष्टि संस्कार होता है जिसका उदाहरण तुलसी काव्य में भी मिलता है दशरथ की मृत्यु का समाचार पाकर सारी अयोध्या दुखी है। भरत अपने पिता की अन्तिम क्रियाकर्म करते हैं।<sup>56</sup> भारतीय महिलाओं में आभूषण पहनने की रीति अत्यन्त प्राचीन काल से चली आ रही है। विवाह के समय दुलहिन को बारह आमरण और सौलह श्रृंगार पहनाए जाते हैं। सीता जी को विवाह के अवसर पर सौलह श्रृंगार का उल्लेख मिलता है।<sup>57</sup> इस प्रकार निष्कर्षत यही कहा जा सकता है कि प्राचीन काल से चले आ रहे रीति—रिवाजों का उल्लेख तुलसी साहित्य में मिलता है जिसका अनुकरण आज भी भारतीय समाज परम्परागत रूप कर रहा है।

### **खेल—क्रीडा एवं मनोरंजन :-**

मनोरंजन लैटिन भाषा के 'RECREATION' शब्द का हिन्दी स्पान्तर है दो लातीनी शब्द RE+CREATION के योग से मिलकर बना है। जिसमें 'RE' का अर्थ है। निर्माण करने वाला।<sup>58</sup> इस प्रकार मनोरंजन का शब्दिक अर्थ है। पुनःनिर्माण करने वाला हिन्दी का 'मनोरंजन' शब्द भी दो शब्दों मन तथा 'रंजन' के योग से मिलकर बना है। मन का अर्थ शरीर को नियन्त्रित करने वाला अर्थात् किसी क्रिया को प्रेरित करने वाला 'रंजन' का अर्थ है— आनन्द देने वाला या आनंदित करना इस प्रकार मनोरंजन का अर्थ मन को आनंदित करने वाली क्रिया से है।<sup>59</sup> बुअर के मतानुसार 'मनोरंजन मन बहलाने का एक ऐसा अनुभव है जिसके द्वारा व्यक्ति को शांति और प्रशन्नता की प्रप्ति होती है शिक्षा की तरह मनोरंजन भी एक मौलिक आवश्यकता है जो अब दैनिक जीवन का अंग है।<sup>60</sup> बटलर के अनुसार :- "मनोरंजन किसी भी प्रकार की तर्जुवा या क्रिया है, जिसमें

व्यक्ति अपनी इच्छा से शामिल होता है, क्योंकि इसको प्रत्यक्ष रूप से आनंद और संतुष्टि मिलती है।<sup>61</sup> अतः जीवन में मनोरंजन की उपयोगिता को स्वीकार करते हुए तुलसीदास ने अपने काव्य में मनोरंजन के अनेक साधनों का वर्णन किया है। राम राज्य में समय-समय पर अनेक आयोजनों का उल्लेख मिलता है सारी प्रजा हर्ष के कारण अनेक प्रकार के संगीत तथा नृत्य द्वारा आनानदित होते हैं जो कि उस समय का मनोरंजन का अनुठा उदाहरण है। रावण के राज्य में भी संगीत नृत्य का प्रबंध है जहाँ अप्सराएं नृत्य करती हैं।<sup>62</sup> यद्यपि तुलसी दास नागरिकों के लिए मनोरंजन को आवश्यक मानते हैं, किन्तु मनोरंजन के साधनों में भद्दे एवं अशिष्ट तथा अश्लील मनोरंजन के साधनों को मान्यता नहीं देते। तुलसीदास ने अप्सरा के नृत्य आदि का पददर्शन रावण के दरबार में ही दिखाया है। इस प्रकार तुलसीदास मानव जीवन में मनोरंजन की उपयोगिता को तो स्वीकार करते हैं, किन्तु उसमें सभ्यता तथा पुरातन संस्कृति के तत्वों को ही मान्यता देते हैं।

### **सामाजिक जीवन :-**

कोई भी साहित्यकार समाज से पृथक साहित्य सृष्टि नहीं कर सकता अतः वह जिस समाज में रहता है, जहाँ की वायु में श्वास लेकर पूर्णता जीवित रहता है वह उसी समाज से सामग्री ग्रहण करता है, अतः सफल साहित्यकार के साहित्य में तत्कालीन समग्र सामाजिक जीवन पूर्णतः के साथ चित्रित हो उठता है। साहित्यकार अपनी समाज व्यवस्था, उसके रीति-रिवाज उसमें व्याप्त परम्पराएं, रूढ़ियों आदि सभी को अपने साहित्य में लेकर चलता है। तुलसीदास जी एक सजग लोकदृष्टा कवि हैं अतः उनके साहित्य में सामाजिक पूर्णता के साथ रूपायित हो उठा है। यहाँ उनके साहित्य में चित्रित सामाजिक जीवन को विभिन्न रूपों में प्रस्तुत किया जा रहा है।

### **वर्णाश्रम व्यवस्था :-**

हमारे समाज में वर्णाश्रम का अत्यन्त महत्व रहा है। जब वर्णाश्रम व्यवस्था शुरू हुई थी। उस समय उसका विशुद्ध रूप देखने के लिए मिलता था, समस्त समाज को चार भागों में विभाजित किया गया था।— ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र वर्णों का क्रियात्मक विभाजन जनता के कल्याण के लिए बना था। श्रीमद्भागवत गीता में इसी प्रकार कर्मों की दृष्टि से वर्णों का विभाजन किया गया है।<sup>63</sup> विद्या पढ़ने एवं पढ़ाने का कार्य करने वाले साथ ही धार्मिक कृत्यों की व्यवस्था करने वाले ब्राह्मण होते थे, देश

की रक्षा के लिए सन्नद्ध रहने वाले और अस्त्र-शस्त्र का प्रयोग करने वाले क्षत्रिय कहलाते थे, कृषि कार्य अथवा वाणिज्य का कार्य करने वाले वैश्य कहलाते थे। आज भारत में श्रम व्यवस्था समाप्त हो चुकी है और उसका स्थान जाति ने ले लिया है, जिसके अनुसार हमारे समाज में सैंकड़ों जातियाँ बन गयी हैं। वर्णाश्रम व्यवस्था का पूर्ण लोप हो जाने के कारण ही तुलसी दास जी ने सामाजिक व्यवस्था को सुचारु रूप से सुव्यवस्थित करने के लिए वर्ण व्यवस्था को स्वीकारा है।—तुलसीदास जी ने रामचरित्रमानस में वर्ण व्यवस्था का उल्लेख किया है। उन्होंने ब्राहमण का कर्म वेद, यज्ञादि तथा विद्यादान करना बताया है। तुलसीदास जी की दृष्टि में वह ब्राहमण शोचनीय है जो अपने धर्म का पालन नहीं करता तथा विषय-भोग में रत रहता है।

**सोचिअ विप्र जो वेद बिहीना। तजि निष धरमु लयलीन ।।<sup>64</sup>**

क्षत्रिय का कर्म राज्यादि करना, युद्ध करना (देश की रक्षा हेतु) आदि है। भारतीय धर्मशास्त्रों में शक्ति की साधना तथा धर्म, संस्कृति और समाज की रक्षा क्षत्रियों का मुख्य धर्म माना गया है। क्षत्रियों की रक्षा के द्वारा ही इस पृथ्वी पर सबको सुख-शान्ति होती है। सुरक्षा के द्वारा ही ब्राहमणों, वैश्यों तथा क्षत्रियों के बड़े-बड़े कार्य निर्विघ्नतापूर्वक सफल और पूर्ण होते हैं। क्षत्रियों के पराक्रम से दुष्टों का दमन होता है और सत्पुरुषों को साहस मिलता है। क्षत्रियों के बल और पराक्रम से ही यह पृथ्वी हरी-भरी है। उनके ही बल से आज प्राचीन ग्रन्थ हमारे समक्ष बचे हुए हैं। समस्त विश्व में क्षत्रियों जैसा पराक्रम किसी अन्य जाति में दिखाई न दिया और न देगा। भारत ही एक ऐसा देश है जिसके क्षत्रिय राजाओं ने अपने प्राण तक दे दिये किन्तु युद्ध से हारकर पीछे न लौटे। युद्ध करते समय भी क्षत्रियों के समक्ष धर्म रहता है। जो क्षत्रिय धर्मपूर्वक लड़कर विजय प्राप्त करना है। विश्व में उसी की यशकीर्ति की ध्वजा सदा के लिए अमर हो जाती है। महाभारत में क्षत्रियों की श्रेष्ठता का इन्द्र रूपधारी विष्णु भगवान ने राजा मान्धाता से कहा—“ संसार में क्षात्र धर्म ही सब धर्मों में श्रेष्ठ, सनातन, नित्य, अविनाशी, मोक्ष तक पहुँचाने वाला सर्वतोमुखी है।”<sup>65</sup> इस प्रकार वर्ग को ही शासन की सत्ता सौंपी गयी है। लेकिन जो शासक अपने धर्म से च्युत है तथा प्रजा रक्षक नहीं, वह तुलसीदास की दृष्टि में क्षत्रिय राजा योग्य नहीं है—

**सोचिअ नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्राण समाना।।<sup>66</sup>**

मनु स्मृति में कहा गया है कि क्षत्रिय का प्रमुख धर्म प्रजा की रक्षा करना है

किन्तु स्मृतिकार ने भी विषयों में अनाशक्ति का आदेश दिया है।<sup>67</sup> तीसरा वर्ग वैश्य का है जिसका प्रमुख पेशा खेती करना, व्यापार करना, देश को धन-धान्य से युक्त बनाना तथा सेवा आदि (अतिथि सत्कार) करना माना गया है। मनुष ने भी वैश्य के 6 प्रमुख धर्म बताये हैं— पशु— रक्षण, दान, यज्ञ, अध्ययन, वाणिज्य, लेन देन और खेती। महाभारत में वैश्य के मुख्य धर्म पर इस प्रकार प्रकाश डाला गया है— व्यापार, पशुपालन, खेती आदि।<sup>68</sup> लेकिन जो अपने इन कर्तव्यों का परिपालन नहीं करता वस्तुतः वह तुलसीदास की दृष्टि में वैश्य कहलाने का अधिकारी नहीं है, उसकी अवस्था शोचनीय ही रहेगी। तुलसी ने अपने काव्य ' रामचरित्रमानस ' में कहा है जो वैश्य इन कर्तव्यों का पालन नहीं करता वह —

**' सोचिअ, वयसु कृपन धनवानू। जो न अतिथि शिव भगति सुजानू।'<sup>69</sup>**

चतुर्थ वर्ग में शुद्र आते हैं जिनका प्रमुख धर्म ब्राहमण, क्षत्रिय, वैश्य की सेवा करना तथा इनकी आज्ञा का पालन करना आदि है। मनु ने शुद्र का एक मुख्य मार्ग बताया है— उच्च वर्णों की सेवा।<sup>70</sup> महाभारत में शुद्र का मुख्य धर्म— तीनों वर्णों की सेवा ही बताया है।<sup>71</sup> इन कर्मों से बढ़कर आगे चलना व अपना मान चाहने वाला तथा ज्ञान का अहं रखने वाला तुलसी की समझ में शोचनीय है और कहा है कि—

**सोचिअ शुद्र विप्र अवमानी। मुखर प्रान प्रिय ग्यान गुमानी।'<sup>72</sup>**

**परम्परायें :-** "धर्मशास्त्र संस्कार, खान-पान, कला, न्याय, व्यवहार, समाज, साहित्य संगीत आदि सभी क्षेत्रों में परम्परा शब्द महत्व रखता है। यह अत्यन्त ही व्यापक अर्थ में प्रयुक्त होता है। परम्परा में स्वीकृत विधियों प्रथाओं तथा प्रणालियों का अनुशरण तो होता ही है, साथ में पूर्वकाल से चली आती हुई विचारधाराओं की अभिव्यक्ति होती है। यदि किसी युग विशेष के व्यक्तियों की कतिपय विचित्र एवं अद्भुत बातों तथा किसी समाज से आई हुई अनुकरणमूलक प्रथाओं को छोड़ दें तो सामाजिक जीवन की समस्त बातें एवं व्यवहार परम्परा के क्षेत्र में आते हैं जिनको समाज पीढ़ियों से ग्रहण करता चला आ रहा है। परम्परागत आचार, व्यवहार संस्था, भाषा, वस्त्र, विधि, गीत, एवं लोकवार्ता परम्परा के अंग हैं।<sup>73</sup> परम्परा एक दूसरे युग से दूसरे युग को सौंपे गए वे मूल्य हैं जो जीवन को उचित एवं सत्य मार्ग दर्शाते हैं। परम्परा एक ऐसी सामाजिक विधि है, जिसमें सांस्कृतिक तत्व एक पीढ़ी को विरासत के रूप में आबाध गति से प्राप्त होते रहते हैं अथवा अभौतिक संस्कृति एवं सीमा तक परिवर्तित होती रहती है कि उसकी प्रतिष्ठा



बनी रहे और फिर एक संस्था के रूप में विकसित होती है जहाँ एक वर्ग विशेष से आचार, व्यवहार, ज्ञान एवं विचार से अनवरत रूप से प्रत्येक आने वाली पीढ़ी तक पहुँचाते रहते हैं, इस प्रकार परिवर्तन परम्पराएँ कहलाते हैं।<sup>74</sup> प्राचीन काल से ही मानव समाज लोक परम्पराओं एवं मान्यताओं का पालन करता चला आ रहा है, जिनके उल्लंघन पर सामाजिक निन्दा का भय बना रहता है। यही भय इन परम्पराओं को जीवित और अखण्ड रखता है। भारतीय लोक-जीवन के प्रारम्भ से ही एक सद् परम्परा रही है कि जब कोई परिवार का सदस्य या अतिथि बहुत दिन बाद घर आता है तो उसके स्वागत में श्रद्धा से आस्थिय सत्कार करते हैं। इस प्रकार परम्परा के सम्बन्ध में " तुलसी के रामचरित्रमानस' में वर्णन मिलता है कि— महाराज दशरथ विश्वामित्र मुनि का आस्थिय सत्कार करते हैं और चरणों को धोकर मुनि को विभिन्न प्रकार के भोजन करवाते हैं।<sup>75</sup> जन्म से लेकर मृत्यु तक सभी विदित 16 संस्कारों को भारतीय समाज अतीतकाल की परम्परा को निर्वहन कर रहा है तथा उसके विधि विधानों को अपनाकर इहलोक और पारलौकिक जीवन को सुधारने का प्रयास करता है। तुलसी काव्य में विवाह के अवसर पर एक जनक सहर्ष अपनी पुत्री को धेनु, वसन, मणि,महिषी, रथ आदि दहेज रूप में देते हैं। जिसकी परम्परा आज भी भारतीय समाज में प्रचलित है।<sup>76</sup> शकुन और अपशकुन की भी भारतीय समाज में परम्परा रही जिसे आज भी वैज्ञानिक युग में प्रधानता दी गयी है। चिंताहरणजंत्री में अंग फड़कने , छींक आने, छिपकली गिरने तथा गिरगिट चढ़ने पर विभिन्न प्रकार के शकुनों व अपशकुनों का वर्णन किया गया है।<sup>77</sup> तुलसी काव्य में सीता जी का बाँये अंग का फड़कना भावी अपशकुन का द्योतक<sup>78</sup>निहाल से लौटते समय भरत को नगर प्रवेश के निकट खर, सिआर, आदि का बोलना, काग को ऊपर बैठना आदि अपशकुन द्योतक है।<sup>79</sup> इस प्रकार आज भी शुभ कार्यों में लोग शकुन व अपशकुन को मान्यता देते हैं। निछावर की परम्परा भारतीय लोक जीवन में प्रारम्भ से ही रही है। शादी-विवाह के अवसर पर नाई, भाट तथा बाटी आदि को पुरस्कार रूप वधु-पक्ष व वर पक्ष के लोग दोनों ही देते हैं। तुलसी काव्य में भी राम-विवाह के अवसर पर नाऊ, चामर आदि निछावर दी जाती है।<sup>80</sup>

अतः निष्कर्ष में यही कहा जा सकता है कि प्राचीन काल से ही समाज में अपनाई गई परम्पराओं को भारतीय समाज में अपनाया जा रहा है। जो भारतीय संस्कृति की एक अमूल्य विशेषता है।

## प्रथायें :-

जब जन रीतियों पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होती रहती है तथा समाज की अधिकाधिक अभिमत प्राप्त कर लेती है तो यह प्रथा बन जाती है। कभी-कभी प्रथायें कानून से भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है, क्योंकि दर पीढ़ी की सफलता इन्हें कानून से भी दृढ़ बना देती है। **मैकाईवर एवं पेज** के अनुसार—“समाज में मान्यता प्राप्त कार्य करने की विधियाँ ही समाज की प्रथाएँ हैं।”<sup>81</sup> बोगार्डस के अनुसार—“प्रथाएँ और परम्पराएँ समूह द्वारा स्वीकृत नियन्त्रण की वही विधियाँ हैं जो सुव्यवस्थित हो जाती है। जिन्हें बिना सोचे-समझे मान्यता प्राप्त कर दी जाती है, और जो पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होती है।”<sup>82</sup> रेस’ के अनुसार— “प्रथा का अर्थ क्रिया करने के किसी भी तरीके का हस्तान्तरण होना है।”<sup>83</sup> दहेज प्रथा की प्राचीनता भारतीय समाज में पुरातन काल से ही प्रतीत होती है जिसका उल्लेख हमें तुलसी काव्य में मिलता है। राजा जनक सीता-राम के विवाह-अवसर, धेनु, रथ, हिषी, स्वर्ण आदि को दहेज रूप में दशरथ सौंपते हैं जो दहेज प्रथा का द्योतक है।<sup>84</sup> संस्कारों से सम्बन्धित प्रथाएँ की भारतीय समाज में अपनाई जा रही है। जन्म से लेकर मृत्यु तक के सभी संस्कारों को समाज में मान्यता प्रदान की गयी है। पुत्रोत्पत्ति पर आज भी बाजा बजवाने तथा नाऊ आदि को न्यौछावर प्रदान की जाती है जिसका उल्लेख तुलसी साहित्य में भी मिलता है। राजा-दशरथ आनन्दमग्न होकर बाजा तथा सामवेद का गान कराते हैं।<sup>85</sup> विवाह अवसर पर वधु पक्ष बारात की अगवानी करता है।<sup>86</sup> कन्या के सिंदूर लगाना आदि प्राचीन प्रथा भी भारतीय समाज में प्रचलित है, जिसका उदाहरण तुलसी साहित्य में मिल जाता है। राम, सीता जी के साथ मंडप में फेरे लेते हैं और उनके सिर पर सिंदूर लगाते हैं।<sup>87</sup> कुल देवता व ग्राम देवी की लौकिक शक्तियों की पूजा-अर्चना की जाती है जिनका उद्देश्य मानव के इहलोक और परलोक को सुधारना है। इस प्रकार शुभ अवसरों पर इनके प्रति श्रद्धा भाव प्रकट किया जाता है। रामचरित्रमानस में भी तुलसीदास ने राम-विवाह के अवसर इन लौकिक देवी देवताओं की पूजा अर्चना का उल्लेख किया है।<sup>88</sup>

अतः इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतीय समाज में अतीतकाल से चली आ रही प्रथाओं को मान्यता प्रदान की गयी है, जो भारतीय समाज की संस्कारमूलक संस्कृति की द्योतक है।

## रूढ़ियाँ—

हर देश में कुछ मान्यताएँ और रूढ़ियाँ प्रचलित रहती हैं। आगे आने वाली पीढ़ी उनका पालन करती चली जाती है। ऐसी रूढ़ियाँ हमारे देश में भी प्रचलित हैं और हर साहित्यकार उन रूढ़ियों से प्रभावित अवश्य होता है। जहाँ रहकर वह साहित्य सृष्टि कर रहा है।

## नारी का आदर्श—

भारतीय संस्कृति में अनेकशः नारी का महत्व प्रतिदिन किया गया है क्योंकि समस्त विकास के भार उसी के उपर होता है, क्योंकि वह बच्चे को जन्म देकर उसको अनेक संस्कार देकर जीवर में प्रवेश करने के योग्य बनाती है। वह बच्चों को संस्कार देती है सास ससुर की सेवा करती है। अपने इन्हीं उत्तरदायित्वपूर्ण कर्तव्यों का समुचित रूप से निर्वाह करना ही भारतीय नारी का आदर्श है। भारतीय संस्कृति में स्त्री का स्थान बड़ा महत्वपूर्ण है। माता, पत्नी, पुत्री आदि रूप में स्त्री को भारतीय संस्कृति की परम्परा में बहुत आदर व सम्मान मिला है। तुलसी को पारिवारिक जीवन में नारी के कल्याण विधायक, ममतामय का रूप विकास करना अभीप्सित था। जीवन की विश्रृंखलाओं के मध्य उन्होंने ऐसी नारी का अंकन किया जो गृह-जीवन में त्याग, ममता और कर्तव्य का संबल लेकर अग्रसर होती है, अपने हृदय में साधना और कर्तव्य का अभिषेक करती है। वेदना और पीड़ा, रक्त, दुख और विषाद, विलास और विराग के मध्य वह सम है। सहिष्णुता और धीरता का वह मूर्तरूप है। तुलसी के काव्य में सीता, कौशल्या, पावती, सुमित्रा, अनुसइया, तथा मन्नदोदरी आदर्श नारी हैं। इनके जीवन में विषम परिस्थितियाँ आयीं किन्तु वे अपने आदर्श से नहीं छिगी हैं।

कौशल्या का आदर्श अनूठा है। कौशल्या का पुत्र राम राजगद्दी पाते—2 चौदह वर्षों का वनवास पा गया है और उस माँ ने उद्दिग्ण होकर न दशरथ को कुछ कहा और न कैकयी को। हृदय पर बाण के समान चोट खाकर भी धैर्य के साथ उन्होंने राम से वन भेजे जाने के कारणों के प्रति जिज्ञासा प्रकट की।

**राजु देन कहूँ सुभ दिन साधा। कहेउ जान बन केहि अपराधा<sup>89</sup>**

राम न माँ से वन जाने की आज्ञा माँगी। थोड़ी देर के लिए वह धर्म व स्नेह के मध्य झूलने लगी। पुत्र को वन जाने से रोकने का अर्थ राजा के आदेश का उल्लंघन होता और परोक्ष में भरत का विरोध भी होता। धर्म की जीत हुई कौशल्य ने राम और

भरत में कोई भेद न कर राम को वन जाने की अनुमति दे दी। उन्हें दुख केवल इतना ही था कि राजा और प्रजा को तो राम के बिना क्लेश होगा ही, भरत भी क्लेश पायेंगे। अपना दुख तो मानो वह भूल गयी। मातृत्व तथा आदर्श नारी का दूसरा उदाहरण यह है कि उन्होंने एक समान नारी की पुत्र के साथ वन जाने की इच्छा एक बार भी प्रकट नहीं की। क्योंकि ऐसा करने से राम को वन जाने में संकोच हो सकता था अथवा वह राम के सामने संकट उपस्थित करने वाली बन सकती थी। पुत्र वियोग की असाध्य पीढ़ को धर्म और नीति परायण नारी ने धैर्य और संतोष के साथ हर विषम घड़ी में वह खरी उतरी।<sup>90</sup> कौशल्या ने समस्त नारी जाति को आदर्श का पाठ पढाया/सीता को सास के सामने पति की अनुगामिनी बनकर वन जाने के लिए कहने में संकोच हो रहा था। सास ने बहू के मनोभाषो को पहचानकर तदनुरूप कार्य किया वन जाने की तीव्र इच्छा देखकर सास ने बहू को आर्शीवाद देकर विदा किया। ऐसी सास से किस बहू का विरोध हो सकता है?

पिता की मृत्यु और राम – लक्ष्मण के वन गमन के पश्चात भरत के ननिहाल से लौटने पर कौशल्या ने उनके साथ जैसा पुत्रवत व्यवहार किया उसका कोई सानी नहीं। भरत को छाती से लगा लेना, उनके आँसू पूछें ना। फिर गोद में बैठाकर अनेक प्रकार से धैर्य बँधाना स्नंह वश स्तनो से दूध बहना आदि प्रकट करता है कि कौशल्या के मन में कैकयी के प्रति मैला था, न उस भरत के प्रति जिसके कारण कैकयी ने उनके पुत्रो को वन जाने को वाध्य किया था। कौशल्या के लिए चारों पुत्र समान थे। श्रमा कौशल्या की निजि निधि थी।<sup>91</sup>

इस प्रकार कौशल्या का आदर्श आधुनिक युग की पाश्चात्य रंग में रंगी हुई नारियों के लिए एक सामाजिक तथा संस्कृति का संदेश है। तुलसी के काव्य में दूसरा उदाहरण सुमित्रा का है जो कर्तव्य की वेदी पर स्नेह का बलिदान परिवार के लिए कर देती है। राम – सीता के साथ उन्होंने पुत्र लक्ष्मण को द्वेष, मद, मोह, और लोभ स्वपन में भी न आने का उपदेश देकर सहर्ष आज्ञा दी: जो पै सीय रामु बन जाहीं। अवध तुम्हार काजु कछ नाही।<sup>92</sup> तुलसी कृत गीतावली में राम – रावण युद्ध में लक्ष्मण के आहत होने तथा मूर्द्धित होने की सूचना पाकर भी वह सामान्य नारी के समान विलाप नहीं कर उठी वल्कि धैर्य और ढाँठस के साथ अपने दूसरे पुत्र को भी राम की सहायता के लिए उतावली हो उठती है।<sup>93</sup> इस प्रकार सुमित्रा ने जो आदर्श चरित्र अंकित किया है, वह उसकी मौलिक

उदभावना है जो पारिवारिक मर्यादा तथा भारतीय संस्कृति की रक्षा का सूचक है।

आदर्श नारियों में 'सीता' का भी पवित्र तथा उज्ज्वल स्थान है जिसने 'धीरज धर्म मित्र अरुनारी, आपतकाल परखिए चारी' के सिद्धान्त को व्यवहार रूप दिया है। राजसुख को ठोकर मारकर वन-वन पैदल यात्रा की तथा अनेक दुख सहे। सीता न अपनी कुशलता से जंगल में भी सुख-चैन का वातावरण अपने साथ-साथ राम लक्ष्मण के जीवन में भी ला दिया था, किंतु काल की कठोर गति ने उसे भी छीन लिया। छंदम वेशी रावण अतिथि के रूप में आकर सीता को उठा ले गया। राम-लक्ष्मण को मार्ग दिखाने के लिए सीता अपने वस्त्र मार्ग में गिराती गई, इससे उनकी सूझ-बूझ का परिचय मिलता है।<sup>94</sup> सीता के आदर्श का अद्वितीय उदाहरण जब प्रतीत होता है कि रावण द्वारा वैभव और विलास के स्वर्णिम प्रलोभन के समक्ष उनका एक ही उत्तर है कि या तो मेरे राम के भुजदण्ड मेरे कण्ठ को घेरेंगे अथवा तेरी तलवार।"<sup>95</sup> सीता के आदर्श तथा सहनशीलता का परिचय हमें तब मिलता है जब लंका विजय के उपरान्त वह राम के सम्मुख लाई गयी। राम ने निर्दोष पत्नी के प्रति प्रिय-वचनों के स्थान पर दुर्वचनों का प्रयोग किया तथा सीता की अग्नि परीक्षा ली, किन्तु सीता बड़े आत्मविश्वास, पतिवृत्य धर्म की इस अग्नि परीक्षा में सफल हुई।<sup>96</sup>

आदर्श नारियों में भगवती पावती अपने अचल पतिव्रत, दृढ़ अनुरक्ति से शिव को पति-रूप में प्राप्त करती है और पतिव्रताओं की शिरोमणि कही जाती है।<sup>97</sup> राक्षस रावण की पत्नी मन्दोदरी का आदर्श भी अत्यन्त ऊँचा है। वह बार-बार अपने पति को समझाती है कि जानकी को राम को सौंप दो, क्योंकि यह अनुचित है वह दुर्नीति का विरोध करती है तथा रावण को सन्मार्ग के लिए प्रेरित करती है और कहती है कि—

**नाथ बयरू कीजे ताही सो। बुधि बल सकिअ जीति जाही सों।**<sup>98</sup>

अत्रि पत्नी की अनुसूया भी एक आदर्श पतिव्रत नारी है। उन्होंने नारी के पतिव्रत धर्म की व्याख्या कर नारी समाज को सचेत किया है। उनके अनुसार नारी के लिए एकमात्र नियम और धर्म मनसा, वाचा, कर्मणा, पतिचरणपूराग ही है।<sup>99</sup> अतः अन्त में हम कह सकते हैं कि तुलसीदास की नारी विषयक विचारधारा में तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक स्थितियों का महत्वपूर्ण हाथ है। धर्म के नष्ट हो जाने के भय से नारी को चहार दीवारी के अंदर बंद कर देने की प्रवृत्ति का होना स्वाभाविक है। तुलसी ने समाज की ओर देखकर ही नारी को ऐसा सेट-अप दिया। वस्तुतः तुलसीदास

का एक आदर्श समाज के निर्माण की आकांक्षा रखते थे। आदर्श-समाज की कल्पना आदर्श-परिवारों के आधार पर ही की जा सकती है। नारी परिवार का प्रमुख अंग है। तुलसी को कौशल्या, सुमित्रा, और सीता जैसी नारी की अपेक्षा थी। अतः उन्होंने उन्हें सर्वगुण सम्पन्न, खोट रहित, अपनी कल्पना के आधार पर चित्रित किया और कैकयी जैसी चंचल चित्त वाली नारी से भारतीय परिवारों को बचाने का प्रयत्न किया। तुलसी ने स्वयं स्वीकार किया था कि "कुमति सुमति सबे उर रहही, नाथ पुरान निगम अस कहहीं।" तुलसी ने सुमति में सम्पत्ति और कुमति में विपत्ति देखी। इस प्रकार निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि तुलसी के काव्य में कौशल्या, सुमित्रा, सीता, अनुसइया, मन्दोदरी आदि नारी आदर्श नारियों की कोटि में आती हैं जिनका आज भी भारतीय समाज में उदाहरणों के द्वारा प्रस्तुत किया जाता है।

तुच्छ संस्कार युक्त नारी कैकयी, मथूरा सूपर्णखाँ, त्रिजटा आदि राक्षसी मनोवृत्ति वाली नारियों को इतिहास कभी दुवारा स्मरण नहीं करता है।

### **समाज में नारी का स्थान:-**

मानव जीवन स्त्री और पुरुष दोनों ही के सहयोग से उत्पन्न होता है। अतः मानव जीवन में स्त्री-पुरुष दोनों का स्थान आत्मा का आधा भाग हैं, इसके बिना शरीर अपूर्ण है।<sup>100</sup> महाभारत के शान्ति पर्व में युधिष्ठिर को नीति का उपदेश देते हुए पितामह भीष्म कहते हैं कि- " संसार में स्त्री के सामन कोई वन्धु नहीं है, स्त्री के समान कोई आश्रय नहीं है, स्त्री के समान कोई मित्र नहीं है, और स्त्री के समान धर्म संग्रह में सहायक कोई नहीं है।"<sup>101</sup> भगवत गीता के अनुसार-" पत्नी के सहयोग से धर्म सम्मत काम मनुष्य का दिव्य धर्म बन जाता है।"<sup>102</sup> मनु स्मृति में कहा गया है कि-" जिस कुल में स्त्रियों की पूजा होती है वहाँ पर स्वयं देवता निवास करते हैं।"<sup>103</sup> इस प्रकार स्त्री-पुरुष जीवन रूपी गाड़ी के दो पहिये हैं। दोनों पहिये बराबर रहने पर ही जीवन रूपी नौका ठीक प्रकार से चल सकती है। इसीलिए स्त्री-पुरुष की अर्द्धांगिनी बतलाया गया है।<sup>104</sup> यद्यपि प्राचीन काल से ही परिवार एवं समाज में पुरुष की प्रमुखता रही है, साथ ही नारी का भी पूर्ण महत्व रहा है, क्योंकि ग्रहस्थ रूपी (जीवन) वाहन स्त्री-पुरुष रूपी पहियों को आधार मानकर ही चलता है। बच्चों को जन्म देने के साथ-साथ उसको संस्कार देने का प्रमुख कार्य नारी ही करती है। इस दृष्टि से भारतीय समाज में नारी का प्रमुख स्थान रहा है।

किन्तु तुलसीदास का अविभार्व ऐसे युग में हुआ था जब तत्कालीन परिस्थितियों की दृष्टि से नारी की स्थिति समाज में अच्छी नहीं थी। पुरुष समाज में अनैतिकता का जोर था। 'पुरुषो में कामुकता इस सीमा तक बढ़ गयी थी कि वे अपनी सभ्यता तथा संस्कृति को प्रायः विस्मृत कर चुके थे। स्त्री जाति का सम्मान और स्वाभिमान कुचल दिया गया था। और उसे भोगविलास की उपकरण मात्र समझा जाने लगा था। पुरुष समाज ने उसके गृहस्थ जीवन को अधिकार – रहित और नरकतुल्य बना दिया था। परन्तु तुलसीदास का दृष्टिकोण नारी जाति के प्रति उदासीन तथा सहानुभूति पूर्ण था। ने नारी की समाजगत परी धीनता के कारण उसके प्रति करुणा पूर्व भावना रखते थे। उनका कहना था कि—कत विधि सृजी नारि—जगमाही। पराधीन सपनेहु सुख नाही।<sup>105</sup> नारी को बाल्यावस्था में पिता के अधीन युवावस्था में पति के वृद्धावस्था में पुत्र के अधीन रहना पड़ता है। इस प्रकार तुलसी के इस दृष्टि कोण से पता चलता है कि वे नारी के स्वतन्त्रता के पक्ष में थे। तुलसी के काव्य में कौशल्या, अनुसइया, सुभित्रा सीता, तारा आदि का विशिष्ट व सम्मानीय स्थान रहा है। उन्होंने अविद्यारूपी व निदनीय नारियों को ही ताडना का अधिकार उन्होंने समुद्र के मुख से कहलवाया है।— ढोल गवार शुद्र पसु नारी। सकल ताडना के अधिकारी शब्द से ध्वनित होता है कि ताडना नियम नहीं है, आवश्यकता पडने पर ताडना दी जानी चाहिए। इस प्रकार तुलसी के दुष्ट पात्र ही निंदनीय है। तुलसीदास ने नारी निन्दा वही पर की है जहाँ पर नारी ने धर्म विरोधी आचरण किया है। कुछ आलाचको का कथन है कि तुलसीदास ने नारी जाति की निन्दा की और उन्हे ठोल—गावार की कोटि में रखा। परन्तु यदि मानस पर निष्पक्ष दृष्टि डाली जाय तो विदित होगा कि नारी के प्रति भर्त्सना के ऐसे प्रमाण उसी समय किये गये जबकि नारी न धर्म – विरोधी आचरण किये। सांस्कृतिक संघर्ष के उस युग में परंपरा के प्रति निष्ठा समाज की आवश्यकता थी। यह आलोचको की भांति है कि नानापुराण निगमागम की दुहाई देने वाले तुलसी के साहित्य में नारी निंदा उनकी निजी कल्पना है। यथार्थ यह है कि वैदिक साहित्य और संस्कृत वाङ्मय में सैंकड़ों नहीं हजारों पक्तियाँ ऐसी मिलजायँगी जिनमें नारी के दोषो का चित्रण किया गया है। 'योगवशिष्ठ' के वैराग्य प्रकरण के एक पूरे सर्ग में स्त्री जुगुप्सा का निरूपण है।

इस प्रकार तुलसी के काव्य में नारी का स्थान अत्यन्त उच्च व सम्मानीय था। सम्मानीय नारियों में पार्वती, कौशल्या, सुभित्रा, सीता, शबरी, मंदोदरी, आदि उच्च कोटि

में आती है। नारी को भी तुलसी ने भक्ति का अधिकारी माना है। तथा भक्ति साधन द्वारा उसके मोक्ष साधन के अधिकारी को मान्यता है —राम भगति रत नर अरुनारी सकल परम गति के अधिकारी तुलसीदास जी ने प्राचीन वर्ण व्यवस्था का ही समर्थन किया था। उस समय इस प्राचीन सामाजिक व्यवस्था का हास हो रहा था, चारो वर्ण इस व्यवस्था का भोडा व दिखावटी प्रदर्शन कर रहे थे जिसको जो मार्ग अच्छा लगता था वह उसी को अपना रहा था। अतः तुलसीदास को विश्रुंखलित होती हुई इस पुरातन व्यवस्था को देखकर अत्यन्त कष्ट हुआ और उन्होने समाज को भारतीय इतिहास के अतीत से समाज को अवगत कराया।

### **आश्रम व्यवस्था:-**

भारतीय धारणा के अनुसार काल को जीवन का मर्म माना गया है। काल ही मृत्यु है। काल के अनुसार ही जीवन का विकास होता है, जिसे आयु कहते हैं। जीवन की कालगत अवस्था अथवा आयु के अनुसार ही जीवन के व्यतीत होने पर जीवन सफल होता है। सम्पूर्ण जीवन को एक रूप मानना जीवन और काल की गति का तिरस्कार करना है। काल की गति के इस तिरस्कार से जीवन का सौन्दर्य और आनन्द भी नष्ट हो जाता है। जीवन का सौन्दर्य जीवन की विविधता में सुरक्षित रहता है। काल की गति और विकास के मानने पर जीवन में अधिक स्वाभाविकता आ जाती जीवन की यही स्वाभाविकता और जीवन का यही सौन्दर्य आश्रम — व्यवस्था का रहस्य है। जीवन की एकरूपता में आयु की अनुकूलता और विविधता के सौन्दर्य का सन्निवेश करने के लिए ही भारतीय धर्म — शास्त्रों में मनुष्य के जीवन को चार भांगो में विभाजित किया गया है। ये चार भाग जीवन के आश्रम कहलाते हैं। इन आश्रमों को ब्रह्मचर्य गृहस्थ, वान प्रस्थ और सन्यास कहते हैं। ये प्रशिक्षण की चार अवस्थायें हैं। इस प्रशिक्षण के दौरान मनुष्य को चार चरणों से होकर गुजरना पड़ता है। आश्रम की व्युत्पत्ति श्रम से होती है। जिसका अर्थ है परिश्रम यह प्रयास करना। इस प्रकार आश्रम जीवन यात्रा में एक विश्राम स्थल का कार्य करते हैं जहाँ से आगे की यात्रा के लिए तैयारी की जाती है। जीवन का चरम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति है। प्रमुख चार आश्रम इस प्रकार के बताए गए हैं :-

- (1) ब्रह्मचर्याश्रम।
- (2) गृहस्थाश्रम।
- (3) वानप्रस्थाश्रम।



#### (4) सन्यासाश्रमं

तुलसीदास ने अपने काव्य में इन आश्रम व्यवस्था को महत्त्व दिया है जिसके विषय में उन्होंने विस्तृत प्रकाश डाला है।

#### (1) ब्रह्मचार्याश्रम :-

ब्रह्मचार्याश्रम जीवन का प्रथम आश्रम है। यह जीवन के निर्माण और विद्याध्ययन का समय है। यह रवास्थय और चरित्र के बनाने का समय है। इनकी समृद्धि से ही जीवन सफल होता है। ब्रह्मचार्याश्रम में मनुष्य अपना गृह त्याग कर गुण के आश्रम में विद्याध्ययन करता है। इस अवस्था में ब्रह्मचारी का प्रमुख धर्म विद्याध्ययन करना, गुरु सेवा तथा बुरा आश्रम में ही सब शिखा प्रा प्राप्त करना है। महाभारत में कहा गया है। कि ब्रह्मचारी का जीवन सभी धर्मों में श्रेष्ठ तथा आदर युक्त होता है।<sup>106</sup>

अर्थशास्त्र में ब्रह्मचारी के कर्तव्य वेदाध्ययन, अग्नि अभिषेक भिक्षावृत्ति तथा उसके गुरुपुत्र ज्येष्ठ ब्रह्मचारी की सेवा करना बताया गया है।<sup>107</sup> इस प्रकार तुलसीदास भी अपनी काव्य 'रामचरितमानस' में गुरु शिष्य सम्बन्धी चक्र को लक्षित करके ब्रह्मचार्याश्रम की महत्ता को प्रदर्शित करते हैं।

#### सद्गुरु मिले जाहि जिमि संसय भ्रम समुदाय'<sup>108</sup>

राम – लक्ष्मण विश्वामित्र के आश्रम में ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए अल्प – समय में ही सारी शिक्षा ग्रहण करते हैं।

#### (2) ग्रहस्थाश्रम :-

गृहस्थ-आश्रम जीवन का दूसरा पर्व है। ब्रह्मचर्य की भूमिका पर प्रतिष्ठित ग्रहस्थ – आश्रम ही मानवीय जीवन की कृतार्थता का प्रमुख पीठ है। ब्रह्मचर्य- आश्रम में उपर्षित शक्ति के उपयोग और शील के व्यवहार का यही अवसर है। विधिपर्वक विवाह करके काम के मर्यादित उपयोग के द्वारा समाज की प्रतिष्ठा ग्रहस्थ का मुख्य धर्म है। इसके अतिरिक्त विद्या का प्रचार तथा कृषि, व्यवसाय आदि के द्वारा आर्थिक अवस्था का संरक्षण ही ग्रहस्थ आश्रम को अत्यन्त श्रेष्ठ तथा अन्य सभी आश्रमों का उपजीव्य माना गया है। दान, आतिथ्य भीक्षा आदि के द्वारा वह अन्य तीनों आश्रमों का पोषण करता है। तीनों आश्रमों का पोषण करता है। तीनों आश्रमों को धारण करने के कारण गृहस्थाश्रम सबसे ज्येष्ठ है।

गृहस्थाश्रम धर्म के मुख्यतः सामाजिक और सांस्कृतिक है, सामाजिक धर्म मनुष्य के

वे धर्म हैं, जो दूसरों के प्रति उसके कर्तव्य के रूप में बताये गये हैं जिनके प्रति गृहस्थ के कुछ कर्तव्य हैं, उनमें संसार के सभी जीव सम्मिलित हैं। एक ओर गृहस्थाश्रम एक सीमित रूप में प्रकृति का उपभोग और परितोष है। किन्तु दूसरी ओर वह त्याग और उदारता के द्वारा दूसरों का सत्कार और पालन भी है। गृहस्थाश्रम एक सीमित रूप में प्रकृति का उपभोग और परितोष है, किन्तु दूसरी ओर वह त्याग और उदारता के द्वारा दूसरों का सत्कार और पालन भी। गृहस्थ के इन कर्तव्यों को भारतीय परम्परा में एक सुन्दर सांस्कृतिक रूप दिया गया है। इसी आश्रम में रहकर मनुष्य त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ एवं काम का एक साथ उपयोग करते हुए मोक्ष की प्राप्ति के योग्य बनता है। मनुस्मृति में कहा गया है कि जिस प्रकार सभी प्राणी वायु के सहारे जीवित रहते हैं उसी प्रकार सभी आश्रम गृहस्थाश्रम के सहारे जीवन प्राप्त करते हैं।<sup>109</sup> तीनों आश्रमों का भारवन करने के कारण यह श्रेष्ठ है। जिस प्रकार सभी छोटी – बड़ी नदियाँ समुद्र में आश्रय पाती हैं। उसी प्रकार सभी आश्रम गृहस्थ आश्रम में आश्रय पाते हैं। इस प्रकार तुलसी के काव्यमयी रचना 'रामचरितमानस' में मनु-शतरूपा गृहस्थाश्रम का पालन करते हुए अन्ति लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त करते हैं। विदहेराज जनक भी श्रुति स्मृति प्रतिपादित गार्हस्थ नीति का अनुसरण करते हुए निर्लिप्ति भाव से जीवन यापन करते हैं। अनुसईया भी सीता जी को गृहस्थाश्रम के धर्म का मर्म समझाती हैं।<sup>110</sup> अतः निष्कर्षत यही कहा जा सकता है कि गृहस्थाश्रम सभी आश्रमों की उत्तमत्तम का परिचायक है।

### (3) वानप्रस्थ आश्रम:-

वानप्रस्थ आश्रम का उद्देश्य गृहस्थ जीवन के कर्तव्यों का पूर्ण करके जीवन को एक रूप और एक नयी प्रेरणा देना है। लौकिक और प्राकृतिक जीवन की अपनी सीमाएँ हैं। अतः यह स्पष्ट है कि ढलती उम्र में जीवन के नवीन विकासों की दशा का आध्यात्मिक ही हो सकती है। वानप्रस्थ जीवन की इसी नई दिशा का निर्माण है। वानप्रस्थ आश्रम के उद्देश्य गृहस्थ जीवन के कर्तव्यों को पूर्ण करके जीवन को एक नया रूप और एक नयी प्रेरणा देना है। लौकिक और प्राकृतिक जीवन की अपनी सीमाएँ हैं। अतः यह स्पष्ट है कि ढलती उम्र में जीवन के नवीन विकासों की दशा आध्यात्मिक ही हो सकती है। वानप्रस्थ जीवन की इसी नई दिशा का निर्माण है। वानप्रस्थ-आश्रम का अभिप्राय गृहस्थ के पूर्ण होने के बाद वन को प्रस्थान करना है। जीवन का यह तीसरा पर्व भारतीय जीवन व्यवस्था की एक अद्भूत कल्पना है। गृहस्थ जीवन में परितृप्ति और

प्रगति हीनता का अनुभव करने वाले उत्साही व्यक्तियों के लिए यह एक नये जीवन का संदेश देता है। साथ ही समाज के लिए व्यक्तियों के लिए ज्ञान और गुणों से लाभ उठाने के अवसर भी हैं। साहित्य और संस्कृति की परम्परा के पोषण का वानप्रस्थ एक महान मार्ग है। वानप्रस्थ मनुष्य को परिवार की संकुचित सीमाओं और स्वार्थों से ऊपर उठकर एक विस्तृत सामाजिक क्षेत्रों में साधना और सेवा द्वारा जीवन की पूर्णता का लाभ उठाने का अवसर हैं। वानप्रस्थ का मूलभाव ग्रहस्थ जीवन के उपयोग और परितृप्ति के बाद त्यागपूर्वक प्रेम और सेवा को अधिक व्यापक और लोकोपयोगी बनाना है। वानप्रस्थ आश्रम के अध्ययन एवं ध्यान मुख्य साध्य है, यहाँ व्यक्ति राग द्वेष से रहित होकर सभी के प्रति मैत्री भाव रखता था। महाभारत में कहा गया है कि ब्रह्मचर्य, क्षमा, शौच, वानप्रस्थी के सनातन धर्म हैं जिनका पालन करते हुए वह स्वर्गलोक को प्राप्त करता है।<sup>111</sup> तुलसीदास के काव्य में भी वानप्रस्थ आश्रम का उल्लेख हमें मिलता है। मनु ओर शतरूपा दोनों वानप्रस्थ आश्रम में रहकर तप करते हैं। महर्षि वशिष्ठ, तपोनिष्ठ अत्रि तथा जनक, पुरोहित शतानन्द आदि का जीवन वानप्रस्थाश्रम की मर्यादित नीति का एक समुज्ज्वल उदाहरण है। इस आश्रम में रहकर मानव यदि तप, योग, साधना आदि को त्यागकर विषय-वासनाओं में लिप्त हो जाए तो वह तुलसी की दृष्टि में शोचनीय है—

**बैखानस सोई सोचै जोगू। तप विहाइ जेहि भावई भोर।<sup>112</sup>**

#### **(4) सन्यासाश्रम :-**

वानप्रस्थ के बाद चौथा अन्तिम आश्रम सन्यास है। सन्यास का अर्थ सामान्य रूप से त्याग है। इस काल में व्यक्ति संसार, घर, राजकाज आदि में ममत्व को हटाकर अपना सम्पूर्ण जीवन ईश्वर स्मरण, तपादि में व्यतीत करता है। तुलसी ने रामचरित्रमानस के लंकाकाण्ड में उल्लेख किया है—

**संत कहहि अस नीति दसानन। चौथेपन जाइहि नृककानन<sup>113</sup>**

अर्थात् रावण को कथित उक्ति में तुलसी ने श्रुतिसम्मत सन्यास आश्रम की ओर उन्मुख किया है किन्तु अगर मनुष्य ऐसा नहीं करता है तो वह तुलसी की दृष्टि से शोचनीय है। इस प्रकार निष्कर्षत यही कहा जा सकता है कि तुलसी मूलतः भारतीय संस्कृति के प्रति निष्ठावान थे। उन्होंने व्यक्तित्व विकास मूल में आश्रमों की महत्ता को अपनी पैनी दृष्टि से पहचानकर अपने साहित्य में मुक्तकण्ठ से उल्लेख किया है जो भारतीय समाज के कल्याण का उत्तम मार्ग है।

## निष्कर्ष :-

उपर्युक्त विवेचना के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि तुलसी के काव्य में सामाजिक सम्बन्धों के साथ-साथ पारिवारिक जीवन, स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध, खेल क्रीड़ा, मनोरंजन, आवास, सामाजिक जीवन, वर्णाश्रम व्यवस्था आदि का सामुहिक चित्रण हुआ है। भारतीय समाज के अनुसार अतिथि-सत्कार, शिक्षा-दीक्षा रीति-रिवाज, परम्पराएँ रूढ़ियाँ, आदि का अत्यन्त स्वाभाविक रीति से काव्य में चित्रित किया गया है।

भारतीय समाज में प्राचीनकाल से ही नारी का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है। यद्यपि पुरुष अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए उसके साथ अन्याय भी करता रहा है, तथपित पुरुष के द्वारा किये गए अत्याचारों को सहन करते हुए भी अपने कर्तव्यों का पालन समुचित रूप से करती रही है। भारतीय समाज में उसकी आदर्श भूमिका है।

अतः वाक्य में यही कहा जा सकता है कि तुलसी के काव्य में सामाजिक जीवन पूर्ण रूप से प्रतिबिम्बित हो उठा है और भारतीय समाज का वास्तविक रूप इनकी रचनाओं के अध्ययन से जाना जा सकता है।

\*\*\*\*\*

## संदर्भ-सूची

1. कान्तदेव- शब्द कल्पद्रुम, पृ० 261, पंचम काण्ड
2. श्यामसुन्दरदास- हिन्दी शब्द सागर, विद्या मन्दिर रानी कटरा, लखनऊ, 1988, पृ० 270
3. सर एम० विलियम्स- संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी, पृ० 808
4. मैकाइवर एण्ड पेज- सोसायटी, नेशनल इन्फार्मेशन एण्ड पब्लिकेशन्स, बम्बई, 2002, पृ० 6
5. एन०पी० ग्रिस्ट- 'इन द बुक ऑफ फन्डामेंटल ऑफ सोसियोलॉजी, पृ० 363
6. लम्ले- प्रिसिपल्स ऑफ सोसियोलॉजी, पृ० 98
7. बीसंज एण्ड वीसज- मॉडर्न सोसायटी, जर्नल ऑफ सोसायटी एशियाटिक, कलकत्ता, सं० 1954, पृ० 88
8. पारसन्स- इन्साइक्लोपीडिया ऑफ दा साइकोलॉजी, पृ० 231
9. एफ०एच० गिडिंग्स- 'प्रिसिपल्स ऑफ सोसोलॉजी, पृ० 27
10. एलेक्स इंकलिश- ' व्हाट इज सोसोलॉजी, पृ० 70
11. लेपियर- 'सोसोलॉजी', पृ० 66
12. मेकाइवर एण्ड पेज- सोसायटी, पृ० 5
13. डॉ० सत्यकेतु विद्यालंकार- प्राचीन भारत का समाज, सरस्वती, मसूरी, दिल्ली, 1999, पृ० 72
14. कार्ल-मार्क्स- फ्रेडरिक एंजेल, वैपिटस्ट मिशन, प्रेस, कलकत्ता, 1998, पृ० 90
15. वृहदारण्यक उपनिषद- सं०वि०प्र० लिमयैवेदिक संशोधन, मण्डल, पूना, सं० 2023, 1/4/13
16. डॉ० चरणदास शर्मा- तुलसी के काव्य में नैतिक मूल्य भारतीय ग्रन्थ निकेतन, नई दिल्ली, 1971, पृ० 49 पर उद्धृत

17. वही, पृ0 49–50 पर उद्धृत
18. तुलसीदास–रामचरित्रमानस, गीताप्रेस गोरखपुर, सं0 2029 , 2/3/59, बालकाण्ड
19. वही, बालकाण्ड, 6/5/67
20. वही, अयोध्याकाण्ड 6/7/65
21. वही,लंकाकाण्ड, 7/69
22. डॉ0 बलदेव प्रसाद मिश्र– तुलसी दर्शन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, 1967, पृ0 36–37
23. तुलसीदास– रामचरित्रमानस, 1/91/2, बालकाण्ड
24. वही, 1/24/7
25. रतनचन्द्र शर्मा– मुगलकालीन सगुण भक्ति काव्य का सांस्कृतिक विश्लेषण, जयपुर पुस्तक सदन, जयपुर, 1979,पृ0 169 पर उद्धृत
26. वही, पृ0 170 पर उद्धृत
27. तुलसीदास –रामचरित्रमानस, अयोध्याकाण्ड, 2/224/7
28. बलदेव प्रसाद मिश्र– मानस माधुरी, साहित्य रत्न भण्डार, आगरा, 1989 पृ0 11
29. वही, पृ0 155
30. तुलसीदास–कवितावली, गीताप्रेस गोरखपुर, 6/24
31. तुलसीदास–रामचरित्रमानस, बालकाण्ड, 2/70/3
32. वही, अयोध्या, 3/91
33. वही, 6/650/7
34. हलायुद्ध–हलायुद्धकोश, पृ0 112
35. मनु स्मृति अनुवादक– सुरेन्द्र कुमार आर्य, साहित्य ट्रस्ट दिल्ली, 2006, 3/106
36. आपस्तम्ब धर्मसूत्र अनुवादक– राजनाथ शर्मा, भण्डारकर, इंस्टीट्यूट , पूना
37. हितोपदेश अनुवादक–नारायण पंडित, भागर्व पुस्तकालय, बनारस, 1974, पृ0 59

38. वही, पृ0 60
39. बाल्मीकि रामायण, गीताप्रेस गोरखपुर, 2030, 18/50/8
40. महाभारत गीता प्रेस, गोरखपुर, 2035, शान्तिपर्व,119/112
41. कालिदास- रघुवंश महाकाव्य, मद्रास प्रकाशन, 13/46
42. कालिदास- अभिज्ञानशकुन्तलम् 4/1
43. सूरसागर, अनुवादक- प्रभुदयाल मित्तल, नवल किशोर, प्रेस, लखनऊ, 1902, पृ0  
42-43
44. कबीर ग्रन्थावली अनुवादक-डॉ0 श्यामसुन्दरदास, पृ0 42 पर उद्धृत
45. वही, 44
46. तुलसीदास- रामचरित्रमानस, बालकाण्ड, 1/206/2
47. वही, बालकाण्ड 1/206/4
48. पाणिनी अष्टाध्यायी, वैदिक यंत्रालय, अजमेर, 1980, 3/3/103
49. तुलसीदास-रामचरित्रमानस, बालकाण्ड, 1/202/2
50. सूरदास, सूरसागर, 10/42
51. तुलसीदास, रामचरित्रमानस, बालकाण्ड,1/328
52. वही, बालकाण्ड,1/333/5
53. वही, अयोध्या, 5/330/4
54. डॉ0 रतनचन्द्र शर्मा- मुगलकालीन सगुण काव्य का सांस्कृतिक विश्लेषण, पृ0 184 पर  
उद्धृत
55. वही, 186 पर उद्धृत
56. तुलसीदास- रामचरित्रमानस,अयोध्या, 2/157
57. डा0 रतनचन्द्र शर्मा- मुगलकालीन सगुण काव्य का सांस्कृतिक विश्लेषण, पृ0 185 पर  
उद्धृत

58. राकेश कुमार वैध— मनोरंजन, पृ0 2
59. वही, पृ0 3
60. वही, पृ0 4
61. डॉ0 अलकानायक— मनोरंजन, पृ0 13
62. तुलसीदास— रामचरित्रमानस, लंकाकाण्ड, 5/115
63. श्रीमद् भागवत गीता, 4/13
64. तुलसीदास— रामचरित्रमानस, अयोध्याकाण्ड, 2/172
65. डॉ शकुन्तला रानी—महाभारत में धर्म, पाटल प्रकाशन, बालूगंज,आगरा, 1970,पृ0 228  
पर उद्धृत
66. तुलसीदास—रामचरित्रमानस, अयोध्याकाण्ड, 2/189
67. मनु स्मृति , 7/5/159
68. वही, 13/141
69. तुलसीदास—राचरित्रमानस, अयोध्याकाण्ड, 2/172
70. मनु स्मृति— 1/6/205
71. महाभारत , 6/68
72. तुलसीदास—रामचरित्रमानस, अयोध्याकाण्ड, 4/172
73. ए0एस0 अल्तेकर— इन्साइकोपीडिया ऑफ सोशल साइन्सेज, पृ0 63
74. हेनरीपिरेन—' सोसियोलॉजी एण्ड रिलेटिड साइन्स, पृ0 322
75. तुलसीदास—रामचरित्रमानस, बालकाण्ड, 1/207/4
76. वही, अयोध्याकाण्ड, 1/25/9
77. चिंताहरण जंत्री अनुवादक— एस0एन0मिश्र, ठाकुर प्रसाद एण्ड संस, वाराणसी, 1993,पृ0  
133
78. तुलसीदास—रामचरित्रमानस, अयोध्याकाण्ड, 2/236



79. वही, 2/158/2
80. वही, 2/236/4
81. मेकाइवर एण्ड पेज- सोसायटी, पृ0 18
82. वोगाडर्स- सोसायटी एण्ड कल्चर एन्वायरमेन्टल, पृ0 475
83. ई0ऐ0 रेस- 'सोशल साइकोलॉजी, पृ0 169
84. तुलसीदास- रामचरित्रमानस, अयोध्याकाण्ड, 2/159
85. वही, बालकाण्ड, 2/162
86. वही, अयोध्याकाण्ड, /30
87. डॉ0 रतचन्द्र शर्मा- मुगलकालीन काव्य का सांस्कृतिक विश्लेषण, पृ0 180 पर उद्धृत
88. वही, पृ0 181 पर उद्धृत
89. डा0 चरणदास शर्मा- तुलसी के काव्य में नैतिक मूल्य, पृ0 55 पर उद्धृत
90. डॉ0 श्रीमती गिरिजा सिंह- तुलसी के नारी पात्र मानस चतुशती आयोजन समिति, अनाज मण्डी, बिजनौर, 1974, पृ0 178
91. वही, पृ0 179 पर उद्धृत
- 92'. तुलसीदास-रामचरित्रमानस, अयोध्याकाण्ड, 2/74/2
93. तुलसीदास-गीतावली, गीताप्रेस गोरखपुर, 8/13
94. डॉ0 श्रीमती गिरिजा सिंह- तुलसी के नारी पात्र, पृ0 179 पर उद्धृत
95. वही, पृ0 180 पर उद्धृत
96. डॉ0 उदयभानु सिंह- तुलसी दर्शन मीमांशा, ल0वि0वि0, लखनऊ, 1976, पृ0 156 पर उद्धृत
97. डॉ0 उदयभानु सिंह- तुलसी की नारी भावना, ल0वि0वि0 लखनऊ, 1986, पृ0 192 पर उद्धृत
98. तुलसीदास रामचरित्रमानस, लंकाकाण्ड, 6/605/3

99. वही, अरण्यककाण्ड, पृ0 3/305
100. शतपथ ब्राह्मण, 5/2/1/16
101. महाभारत, शान्तिपर्व, 16/145
102. भगवत गीता , 7/145/16
103. मनु स्मृति, 5/184
104. शिवदत्त ज्ञानी— भारतीय संस्कृति, भारती पुस्तक भण्डार, लीडर, प्रेस प्रयाग, 1978,पृ0  
137
105. तुलसीदास—रामचरित्रमानस, पृ0 5/59/3
106. महाभारत, शान्तिपर्व, पृ0 3/117
107. अर्थशास्त्र, 1/21/9
108. तुलसीदास—रामचरित्रमानस, 3/15/7
109. मनु स्मृति,पृ0 3/77
110. तुलसीदास—रामचरित्रमानस, 3/1/15
111. महाभारत, अनुशासन पर्व,पृ0 1/1/141
112. तुलसीदास—रामचरित्रमानस, पृ0 1/73/11
113. वही, लंकाकाण्ड, 2/70/13